Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-1, June 2019
Impact Factor: 4.081
www.researchguru.net

महिला उत्पीड़न के बरक्स समाचार पत्रों का संवेदनात्मक बोध

डॉ. तेजनारायण ओझा
असिस्टेंट प्रोफेसर, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. जितेंद्र कुमार भगत
असिस्टेंट प्रोफेसर (तदर्थ), महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार:

जनसंचार के सभी माध्यम प्रत्यक्ष रुप से या परोक्ष रूप से ज्यादातर पूंजीपतियों के नियंत्रण में है। महिलाओं के साथ होनेवाले दुर्व्यवहार की प्रस्तुति में समाचार पत्रों वैचारिक हस्तक्षेप की अपेक्षा की जाती है। 2018 के आरंभ में 'मी टू' नाम से महिलाओं ने जो मुहिम चलाया, अखबार में उसे प्रमुखता से स्थान मिला। पहली बार अपने यौन उत्पीड़न पर महिलाओं ने खुलकर अपनी बात रखी। लेकिन ये उच्चवर्गीय महिलाओं की पीड़ा थी। मध्यम वर्गीय और निम्नवर्गीय महिलाओं की स्थिति बहुत बदतर है। सौ में से इनकी एक खबर ही सामने आ पाती हैं। समाचार पत्रों में महिला-उत्पीड़न और उनसे जुड़ी खबरों से संबद्ध ऑकड़ों पर आधारित आलेख में उल्लेख्य शोध ऐसी खबरों की संख्या, कॉलम की संख्या, मुख्य पृष्ठ या संपादकीय में प्राप्त जगह, प्रबंधन की रूचि के आधार पर जेंडर समीकरण को परखने की कोशिश करती है। अखबार में छपनेवाली ऐसी खबरों की प्रकृति देखें तो पहली नजर में काफी निराशाजनक लगता है। ऐसे असभ्य समाज के प्रति उदासीनता और जुगुप्सा उत्पन्न होने लगती है। न्याय व्यवस्था और सामाजिक तंत्र से हमारी आस्था डगमगाने लगती है। प्रेम, विवाह, परिवार जैसे उच्चतर मूल्य-व्यवस्था को हम क्षरित होते हुए देखते हैं।

महिला उत्पीड़न से जुड़ी जितनी वारदातें हैं, उनमें सर्वाधिक मामले बलात्कार और यौन उत्पीड़न के हैं। 16 दिसंबर की घटना का देश के सभी अखबारों ने पुरजोर विरोध किया और समाज के इस घिनौने पक्ष को बड़ी बेबाकी से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। मीडिया समाज का वो अंग है जो समाज को चिंतनशील, प्रगतिशील बनाता है। नारी विषय पर भी मीडिया ने अपने चरित्र के अनुरूप एजेंडा सेटिंग का काम किया है। मीडिया द्वारा लोगों तक वो वह बात भी पहुंची जो मीडिया के जरिए महिला समाज तक पहुँचना चाहता था। परंतु इसके बावजूद महिला उत्पीड़न एवं बलात्कार के मामले थम नहीं रहे हैं, अतः यहां दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर ढूंढना अनिवार्य है-

1) क्या मीडिया के आलेखों के अंतर्वस्तु में कोई कमी है?

2) आज मीडिया उन सही कारकों को चिन्हित कर पाये हैं जो महिलाओं के प्रति पुरूष समाज की विकृत मानसिकता के लिए जिम्मेदार हैं?

खबरों के केंद्र में समाज ही है और अखबार इसी समाज का अवलोकक है और एक हद तक आलोचक भी। इसलिए अखबार पर प्रश्न चिह्न लगाने से पहले समाज को खुद में भी बदलाव लाना होगा। यह अवश्य है कि अखबार को अपने भीतर संवेदनात्मक बोध जागृत करना होगा। संवेदना से उपजे इस बोध में पीड़िता के दुख से तादात्मय स्थापित कर पाने की तड़प होगी और न्याय प्रक्रिया को तीव्रतर करने की लालसा भी मौजूद होगी। व्यवसायिक हित और प्रमुख अखबार बने रहने के होड़ के बीच इस संवेदनात्मक बोध को हासिल करना चुनौती है मगर सामाजिक सरोकार से गहरे जुड़े होने के दावे को यथार्थ करने की इस विवशता से ही अखबार जीवित रह सकता है और समाज सचेत।

की-वर्ड्स: मी टू, यौन उत्पीड़न, निर्भया कांड, कॉलम, एजेंडा सेटिंग, पूंजीपति नियंत्रण।

परिचय :

समाचार पत्रों का इतिहास उतना पुराना नहीं है, जितना महिला-उत्पीड़न का। लेकिन इन दोनों के बीच रिश्तों की पड़ताल करना उतना ही मुश्किल है जितना किसी के मनोभाव की पड़ताल करना। इतना जरूर है कि आदर्श और यथार्थ की इस खींचतान में चीजें प्रकाश में आती रही हैं और यह प्रयास संकरी गली से भीड़ को निकालने की कोशिश से कमतर नहीं है।

भारतीय संस्कृति जितनी विविधमयी है, सामाजिक संरचना उतना ही जटिल। इसकी वर्गीय संरचना, जातीय अस्मिता और उसमें नीहित लैंगिक विषमता Hkkभारत जैसे विकासशील देश के लिए गंभीर चुनौती है। पत्रकारिता के जरिए इसके तमाम पहलुओं पर शुरू से विचार किया जाता रहा है। अखबार की खबरों की प्रामाणिकता को प्राय: संदेह के दायरे से बाहर रखा जाता है। प्रिंट मीडिया समय-समय पर अपने औजार और तकनीक को पैना करता रहा है मगर क्या वह तथ्य संप्रेषण को वैचारिक मुहिम के साथ जोड़कर देखपाने की दृष्टि विकसित कर पाया है या सिर्फ खबर पहुॅचाना ही उसका नीहितार्थ रह गया है? इस प्रश्न को हम दो नजरिए से देख सकते हैं- एक कन्टेंट और कवरेज के आधार पर, दूसरा प्रभाव और परिणित के आधार पर। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि जनसंचार के सभी माध्यम प्रत्यक्ष रुप से या परोक्ष रूप से ज्यादातर पूंजीपतियों के नियंत्रण में है। हिंदुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया जैसे प्रकाशन टाटा, बिड़ला, डालमिया, गोयनका जैसे पूंजीपतियों के हाथ में है। तब यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि पूंजी के नियंत्रण में रहने वाले ये समाचार पत्र अपने विचार प्रस्तुति में कितने निरपेक्ष रह पाते हैं। जवरीमल्ल पारख के अनुसार- 'भारत में राष्ट्रीय प्रेस प्राय: दो तरह के हैं- एक वह जो शासक पार्टी से नाभिनालबद्ध है। उनका चरित्र कमोबेश वैसा ही है जैसा रेडियो या दूरदर्शन का है। सरकारी नीतियों का आंख मूंदकर समर्थन करना इनकी एकमात्र नीति है। दूसरे तरह के समाचार पत्र समूह वे हैं जिनकी मुद्रा आलोचनात्मक है, जो सरकारी नीतियों का आंख मूंदकर समर्थन नहीं करते, जिनके विभिन्न विचारधाराओं और राजनीतिक प्रतिबद्धताओं का समर्थन करने वाले लेखकों के लेख प्रकाशित होते हैं। स्पष्ट ही ऐसे पत्र अधिक विश्वसनीय नजर आते हैं और इसलिए इनका सर्कुलेशन पहली श्रेणी की तुलना में प्राय: ज्यादा होता है।'[1] महिलाओं के साथ होनेवाले दुर्व्यवहार का इतिहास लंबा रहा है, प्रस्तुत आलेख में उसके कारणों पर विस्तार से चर्चा का अवकाश नहीं है, क्योंकि यहां प्रश्न उनके उत्पीड़न का नहीं, उसकी प्रस्तुति में समाचार पत्रों के वैचारिक हस्तक्षेप की है। वह कितना कारगर हथियार है और ऐसे मसलों पर लगाम कसने में उनकी कितनी भूमिका है या बन सकती है, ऐसे प्रश्न यहां महत्वपूर्ण हैं। संषर्ष की इस मुहिम में अखबार अपनी भूमिका के प्रति जो भी रवैया अपनाये, लेकिन महिलाओं को अपने उत्पीडन के प्रति मुहिम में शामिल होना होगा। 2018 के आरंभ में 'मी टू' नाम से महिलाओं ने जो मुहिम चलाया, अखबार में उसे प्रमुखता से स्थान मिला। पहली बार अपने यौन उत्पीड़न पर महिलाओं ने खुलकर अपनी बात रखी। लेकिन ये उच्चवर्गीय महिलाओं की पीड़ा थी। मध्यम वर्गीय और निम्नवर्गीय महिलाओं की स्थिति बहुत बदतर है। आज भी अपने साथ होनेवाले छेड़छाड़ पर वे इज्जत-मर्यादा के नाम पर मुखर नहीं हो पाती हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौ में से एक खबर ही सामने आ पाती हैं। समाचार पत्रों में महिला-उत्पीड़न

[1] जनसंचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र, जवरीमल्ल पारख, पृष्ठ 40

और उनसे जुड़ी अन्य खबरों से संबद्ध ऑकड़ों को हासिल करने के लिए के लिए एक शोधपरक आलेख को आधार बनाया गया है। इसमें दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में प्रकाशित होनेवाले तीन प्रमुख हिंदी अखबार का चयन किया गया है और छह महिने तक इन अखबारों से प्राप्त खबरों का आकलन किया गया है। उन ऑकड़ो को नये सिरे से पडताल करने पर संबद्ध विषय के निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है। सर्वप्रथम यहां यह देखा गया है कि महिलाओं से संबद्ध खबरों के लिए अखबार में कितने कॉलम खर्च किए गए हैं। दिए गए बार ग्राफ-1 से स्पष्ट है कि महिला से संबद्ध खबरों को सर्वाधिक दो कॉलम (190 के करीब आवृति) में लिखे गए, जबकि इस दौरान राजनैतिक खबर, खेल खबर और विज्ञापन के बीच इसे शायद आधा पन्ना ही हासिल हो पाया।

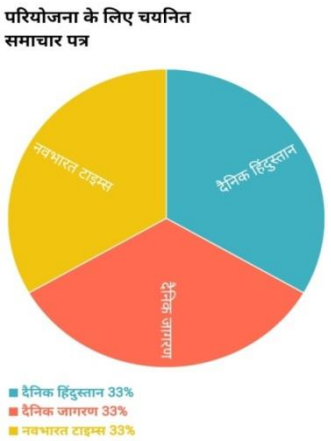

पाई चार्ट 1

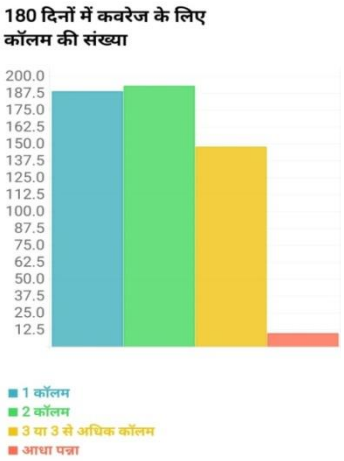

बार ग्राफ 1

ये कॉलम अखबार के किस पन्ने पर प्रकाशित हुए, इससे भी विषय या खबर की गंभीरता का पता लगाया जा सकता है। पाई चार्ट-2 के अनुसार ऐसी खबरें मुख्य पृष्ठ या संपादकीय में कम ही जगह बना पाती है। यह प्राय: स्थानीय खबरों के लिए इस्तमाल की जाने वाली अन्य पृष्ठों पर ही प्रकाशित होती हैं। बार ग्राफ 2 से स्पष्ट है कि प्रतिदिन छपनेवाली खबरों में औसतन तीन खबर महिला उत्पीड़न की अवश्य रहती है। इन खबरों को संपादकीय में शायद ही कभी जगह मिल पाती है। पाई चार्ट 3 से यह स्पष्ट है। खबरों में महिला सुरक्षा का मसला सर्वाधिक देखा गया है (बार ग्राफ 3)।

अखबार में छपी खबर तो सूचना मात्र है मगर उसका संपादकीय उस अखबार का वैचारिक घोषणापत्र होता है जिससे वह अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध करता है। लेकिन यह भी एक झोल बनकर रह गया है। 'अधिकांश पाठक वर्ग यह महसूस करता है कि समाचार पत्र विपक्ष का काम करते हैं ताकि वह परिवर्तन लाने में सहायक हो सके और इसी उद्देश्य से वह अपने संपादकीय पृष्ठ को अधिकाधिक आलोचनात्मक बनाते हैं इस तरह समाचार पत्रों में लिखे जा रहे संपादकीय भ्रम उत्पन कर रहे हैं।'[2]

[2] पत्रकारिता एवं जनसंपर्क, आलोक टीडीएस आलोक, पृष्ठ संख्या 98

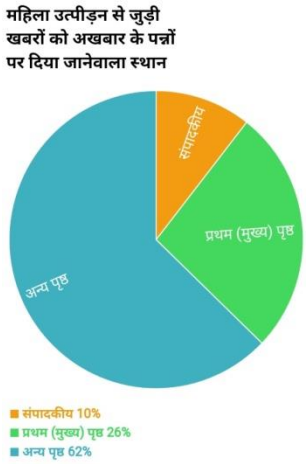

पाई चार्ट 2

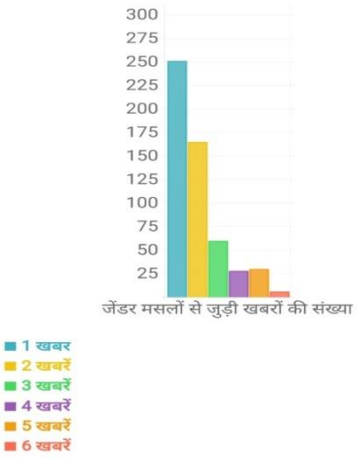

बार ग्राफ 2

रिपोर्टर पर वैचारिक और व्यावसायिक दबाव रहता है। 'जनसंपर्क और मीडिया वास्तव में एक सिक्के के दो पहलू हैं। यह समाज का सही दिशा में विकास करता है.....जिस सूचना तंत्र से इनका संबंध रहता है, उसका समाज के लिए ठीक से उपयोग संभव हो, उसके दृष्टिगत जनसंपर्क कर्मी को बड़े दायित्व की भावना से अपना कार्य करना होता है ताकि मीडिया की स्वतंत्रता भी बाधित ना हो तथा सूचना का समाज हित में दुरुपयोग भी न हो।[3]

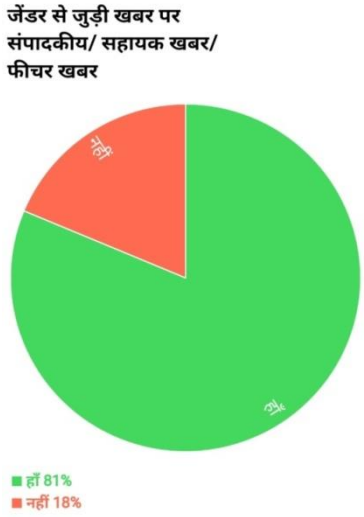

पाई चार्ट 3

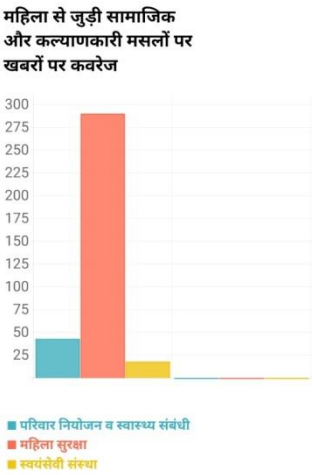

बार ग्राफ 3

पत्रकारिता का कार्य एक वृहद प्रबंधन से जुड़ा होता है। खबर जुटाने से लेकर पाठक तक खबर पहुँचाने के मध्य कई लोग होते हैं। इसलिए इतने हाथों और चरणों से गुजरकर कई बार कोई खबर अपनी मूल स्वरूप खो चुका होता है। 'संवाददाता और संपादन के विभिन्न स्तर होते हैं जो नैतिकता और प्रतिष्ठा के अपने-अपने सिद्धांतों तथा व्यवहारों से अपने को बांधे रखते हैं..... उनकी आलोचना में इतना कहने से या नहीं ढक सकता कि संवाददाताओं और संपादकों के भी अपने विचार और हित होते हैं या उनका इधर-उधर झुकाव नहीं होता। देखने में तो यहां तक आया है कि जो तकनीकी, गैर तकनीकी श्रमिक समाचार-पत्रों में काम करते हैं, वह भी समाचार में परिवर्तन करा लेते हैं।'[4]

[3] पत्रकारिता एवं जनसंपर्क, आलोक टीडीएस आलोक, पृष्ठ संख्या 18

[4] पत्रकारिता के प्रश्न, राजेंद्र शंकर भट्ट, पृष्ठ संख्या 3

महिला उत्पीड़न से जुड़ी जितनी वारदातें हैं- जैसे- घरेलू हिंसा, दहेज-मामले, अपहरण, बलात्कार, प्रतिशोध/एसीड अटैक, लूटपाट, सेक्स अपराध, हत्या, आत्महत्या, दुर्घटना, मानव-तस्करी, पुलिस,प्रशासन अथवा अन्य के द्वारा उत्पीड़न, परित्याग, बिनब्याही मां से जुड़ी जितनी खबरें हैं, उनके आंकड़े (पाई चार्ट-4) पर नजर डालें तो सर्वाधिक मामले बलात्कार और यौन उत्पीड़न के हैं। गंभीर खबरों के साथ फोटो, रेखाचित्र अथवा कार्टून लगाए जाते हैं, इस अर्थ में महिला उत्पीड़न के मामले में फोटा लगाने का मामला (पाई चार्ट-5) आधा-आधा ही है।

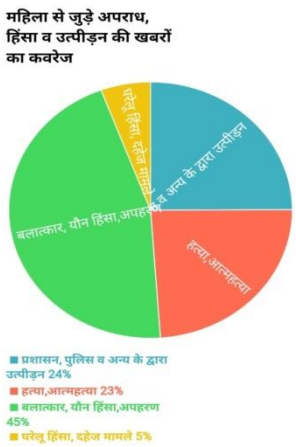

पाई चार्ट 4

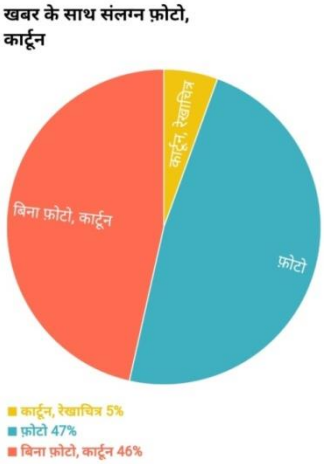

पाई चार्ट 5

दहेज, तलाक, सुरक्षा मसले, पर्सनल लॉ, स्त्री मानवाधिकार आदि कानूनी मामलों से जुड़ी खबरों का औसत क्या है, इसके ऑकड़े (बारग्राफ-4) पर नजर डालें तो सर्वाधिक मसले मानवाधिकार संबंधी मामलों के नजर आए। महिला उत्पीड़न के मसलों पर ज्यादातर खबरों को किसने लिखा, उसमें भी स्त्री पत्रकारों या लेखिकाओं की भागीदारी (बारग्राफ-5) बाकियों की तुलना में नगण्य है।

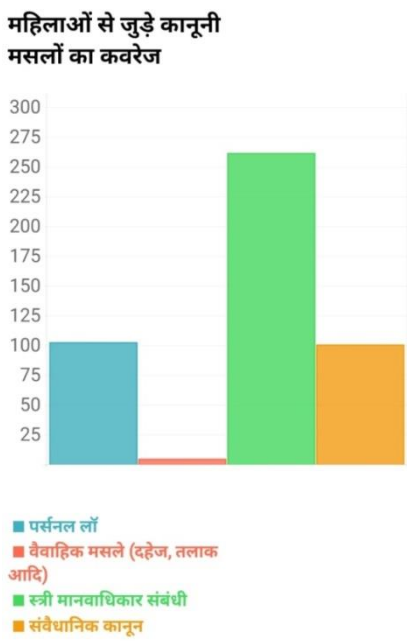

बार ग्राफ 4

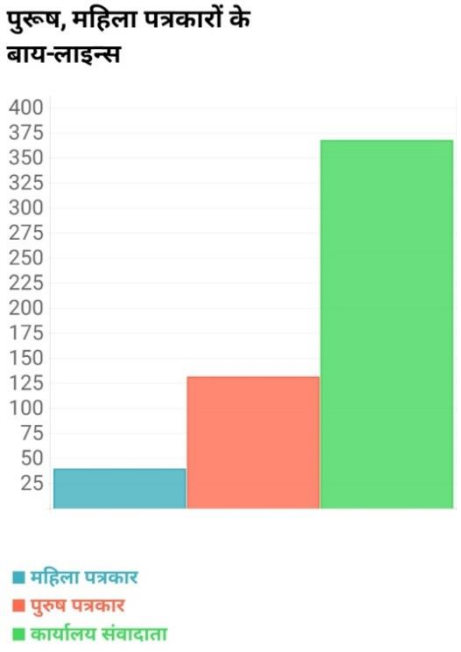

बार ग्राफ 5

ध्यातव्य है कि वर्ष 2012 में अन्ना हजारे का आंदोलन बहुचर्चित घटना थी, उसी वर्ष 16 दिसंबर को निर्भया कांड की खबर ने सबको दहला दिया। 16 दिसंबर की इस घटना का देश के सभी अखबारों ने पुरजोर विरोध किया और समाज के इस घिनौने पक्ष को बड़ी बेबाकी से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया और उस जन-आंदोलन को भी अपना समर्थन दिया जो इस वीभत्स घटना के फलस्वरुप उभरा। अखबार की संवेदनशीलता का अंदाजा उनकी भाषा से लगाया जा सकता है। रिपोर्टर के जहन में दो-तीन बात होती है कि खबर के दूरगामी या तात्काकलिक प्रभाव को देखते हुए इसका शीर्षक कैसा दिया जाए, खबर का रूझान किसके हक में जाए और अन्य अखबारों की तुलना में यह सनसनीखेज बनाकर पेश किया जाए अथवा सच्चाई बयान की जाए। बलात्कार की घटना पर किसी रिपोर्ट की भाषा कैसी होनी चाहिए, यह बहुत महत्वपूर्ण है। कहीं ऐसा न हो कि वह ऐसी घटनाओं के प्रति विरोध के बजाए पाठक में विकृति उत्पन्न करने लगे। समाज में यह संदेश जाना बेहद आवश्यक है कि 'एक स्वस्थ आदमी बलात्कृत स्त्री को नहीं, बलात्कारी को घृणा की निगाह से देखेगा।'[5] बलात्कार का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाये तो यह पता चलता है कि अधिकतर बलात्कारी अदालती प्रक्रिया से बच निकलते हैं क्योंकि ' अदालतों पर भी पुरूषों का ही कब्जा है। जिस पुलिस का काम बलात्कारी को सजा दिलाना है, वह स्वयं मौका पाते ही बलात्कार करते हुए पायी जाती है।' [6]

गली-मोहल्ले में दैनिक छेड़छाड़ आम बात है। इस पर तसलीमा नसरीन लिखती हैं- ' इन घटनाओं का मैंने कभी विरोध नहीं किया। बल्कि मैं अपने आपको खुशनसीब समझती हूँ कि अब तक किसी ने 'एसिड बल्ब' मारकर मेरा चेहरा नहीं जलाया, मेरी आंखें फोड़कर अंधा नहीं किया। यह मेरा सौभाग्य है कि वहशी मर्दों के किसी गिरोह ने अब तक मेरा बलात्कार नहीं किया। इतना ही नहीं, मैं अब तक जीवित हूँ, यह भी मेरा सौभाग्य ही है।'[7]

इसके एक और कारण पर प्रकाश डालते हुए पुष्पा तिवारी लिखती हैं- ' यौवन उन्मुख किशोर मीडिया एवं फिल्म से गलत संकेत प्राप्त करके छेड़छाड़ की ओर अग्रसर होते हैं एवं यही छेड़छाड़ महिलाओं के विरुद्ध घटित होने वाले गंभीर अपराध अपराधों की पुरोगामी घटना होती है टेलीविजन एवं फिल्म में यथार्थ से परे चित्रण को देख कर किशोरों में लड़कियों से छेड़छाड़ की प्रवृत्ति जागृत होती है वह ऐसे आयु समूह में होते हैं कि जीवन के तथ्यों से काल्पनिक बातों को छानकर अलग नहीं कर पाते हैं' [8]

महिलाओं के साथ जितने भी भेदभाव किए जाते हैं, उनके साथ हिंसा और अत्याचार होते हैं, इन सब से निपटने के लिए कई कानून बनाये गए हैं। 'स्त्रियों के प्रति होनेवाले अपराधों को हम देखें तो पाएंगे कि दहेज, हत्या, बलात्कार, यौन उत्पीड़न के मामलों में प्राय: अपराधियों को सजा नहीं मिलती। संगठित क्षेत्रों के मुकाबले असंगठित क्षेत्र जहां कुल 93 प्रतिशत स्त्रियां काम करती हैं, वहां महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिक होता है।'[9]

---

[5] बलात्कार पर कुछ प्रस्ताव, स्त्री के लिए जगह, राजकिशोर, पृ.119

[6] वही , पृ.120

[7] औरत के हक में, तसलीमा नसरीन, पृ. 6

[8] महिलाओं के विरुद्ध अपराध: सशक्तिकरण एक अनिवार्यता (महिला सशक्तिकरण विविध आयाम, संपादक डॉ हरिमोहन धावन) पुष्पा तिवारी, पृष्ठ संख्या 57

[9] स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, पृ. 49

अखबार में छपनेवाली ऐसी खबरों की प्रकृति देखें तो पहली नजर में काफी निराशाजनक लगता है। ऐसे असभ्य समाज के प्रति उदासीनता और जुगुप्सा उत्पन्न होने लगती है। न्याय व्यवस्था और सामाजिक तंत्र से हमारी आस्था डगमगाने लगती है। प्रेम, विवाह, परिवार जैसे उच्चतर मूल्य-व्यवस्था को हम क्षरित होते हुए देखते हैं। मसलन- 'यदि अखबारों में छपनेवाली खबरों पर गौर करें तो यह प्रेम काफी हिंसा से भरा है। 'तू मेरी नहीं तो किसी और की भी नहीं' के अंदाज में निराश प्रेमी द्वारा प्रेमिका को मार डालने की घटनाएं आम हो चली हैं।' [10]

इसलिए एक ऐसे समाज की परिकल्पना असाध्य लगने लगती है जहां जेंडर असमानता की जड़ें इतनी गहरी पैठ बना चुकी है। नारी को सम्मान देनेवाला आदर्श राज्य वास्तव में कहीं नजर नहीं आता। इसलिए क्षमा शर्मा का कहना जायज है कि 'वह 'दैवीय' समाज कहीं नहीं है जहां स्त्री को दैहिक शोषण से न गुजरना पड़ता हो या उसका दैहिक शोषण कम हो गया हो।'[11]

अखबार एक हद तक समाज को दोहरे नुक्सान की तरफ धकेल रहा है। एक तरफ अपने लिए पूंजी की उगाही और दूसरी तरफ दबंग गुट को लाइम-लाइट में रखकर समाज में उनके खौफ का विज्ञापन। तब वे सामाजिक सरोकार को पूरी तरह ताक पर रख देते हैं। इस तरह अखबार के संरक्षक और समाज के अपराधियों का स्वार्थ एक बर्बर समाज का निर्माण कर रहे होते हैं। 'खबर अगर एक मानवीय सूचना नहीं है, व्यवस्था एक उत्पाद है, तो उसकी सीमा बेचने और खरीदने वालों के स्वार्थों द्वारा निर्धारित होगी।'[12]

मीडिया समाज का वो अंग है जो समाज को चिंतनशील, प्रगतिशील बनाता है। नारी विषय पर भी मीडिया ने अपने चरित्र के अनुरूप एजेंडा सेटिंग का काम किया है। मीडिया द्वारा लोगों तक वो वह बात भी पहुंची जो मीडिया के जरिए महिला समाज तक पहुँचना चाहता था। परंतु इसके बावजूद महिला उत्पीड़न एवं बलात्कार के मामले थम नहीं रहे हैं, अतः यहां दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर ढूंढना अनिवार्य है-

1) क्या मीडिया के आलेखों के अंतर्वस्तु में कोई कमी है?
2) आज मीडिया उन सही कारकों को चिन्हित कर पाये हैं जो महिलाओं के प्रति पुरूष समाज की विकृत मानसिकता के लिए जिम्मेदार हैं?

हालांकि हम इन प्रश्नों पर वाद विवाद करके भी कुछ खास हासिल नहीं कर पाएंगे अपितु हम इन प्रश्नों पर मंथन करके समस्या के केंद्र में पहुंच कर एक नए नजरिए से, जिसमें स्त्री अधिकार की दृष्टिकोण सम्मिलित हो, समस्या के कारक को चिन्हित कर सकेंगे और फिर उसके निवारण हेतु योजनाबद्ध तरीके से संचार का निर्माण एवं उसका संप्रेषण कर सकेंगे। अखबार यथास्थिति को तोडने का दावा करते हैं और एक हद तक इसे तोड़ने में कामयाब भी होते हैं मगर उन खबरों की पीड़िता को न्याय दिलाने तक साथ नहीं देते। वे मझधार में छोड़कर नई खबरों को पीछा करने लगते हैं। पत्रकारिता में महिलाओं को न केवल सब्जेक्ट के रूप में देखा जाता है बल्कि एक ऑब्जेक्ट के रूप में भी देखा जाता है। खबर बनने और खबर बनाने के लिए इससे बढ़िया टूल और क्या हो सकता है, जिससे सामाजिक सरोकार से जुड़े रहने की नीति भी कामयाब दिखे, और व्यवसायिक हित का अहित भी न हो। सुधीश

[10] स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, पृ. 63

[11] वही, पृ. 69

[12] पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य, राजकिशोर, पृष्ठ संख्या 14

पचौरी के शब्दों में कहें तो 'त्वचा और चेहरे के सौंदर्य करण की इस मुहिम की सबसे बड़ी शिकार स्त्री है। उसे मानवीय अधिकार और सम्मान देने की जगह एक आकर्षक वस्तु में बदल दिया गया है।'[13]

इस देश में समाचार पत्रों ने एवं जनसंचार के अन्य माध्यम जैसे टीवी, रेडियो, इंटरनेट ने समाज से जुड़े हर पहलू को लोगों तक पहुंचाया है, हालांकि इस प्रक्रिया में जनमाध्यमों के ऊपर ये आरोप भी लगे हैं कि जनमाध्यम सिर्फ मुनाफाखोरी में जुटे हुए हैं और अपनी जिम्मेदारी भूल चुके हैं, परंतु इक्के-दुक्के ऐसे मामलों के आधार पर जनमाध्यमों के योगदान पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता। सभी जनमाध्यमों ने समय-समय पर स्त्री विमर्श पर चर्चाकर समाज में महिला अधिकारों को लेकर अपनी चिंता प्रकट की है।

निष्कर्ष: खबरों के केंद्र में समाज ही है और अखबार इसी समाज का अवलोकक है और एक हद तक आलोचक भी। इसलिए अखबार पर प्रश्न चिह्न लगाने से पहले समाज को खुद में भी बदलाव लाना होगा। यह अवश्य है कि अखबार को अपने भीतर संवेदनात्मक बोध जागृत करना होगा। संवेदना से उपजे इस बोध में पीड़िता के दुख से तादात्मय स्थापित कर पाने की तड़प होगी और न्याय प्रक्रिया को तीव्रतर करने की लालसा भी मौजूद होगी। व्यवसायिक हित और प्रमुख अखबार बने रहने के होड़ के बीच इस संवेदनात्मक बोध को हासिल करना चुनौती है मगर सामाजिक सरोकार से गहरे जुड़े होने के दावे को यथार्थ करने की इस विवशता से ही अखबार जीवित रह सकता है और समाज सचेत।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्त्री के लिए जगह, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2002
2. स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2002
3. औरत के हक में, तसलीमा नसरीन,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 2002
4. स्त्री:परंपरा और आधुनिकता, संपादक राजकिशोर, वाणी प्रकाशन संस्करण 1999
5. दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1998
6. नारी प्रश्न, सरला माहेश्वरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1998
7. जनसंचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र, जवरीमल्ल पारख, अनामिका डिस्ट्रीब्यूटर, प्रथम संस्करण 1996
8. पत्रकारिता एवं जनसंपर्क, टी.डी.एस आलोक, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2004
9. पत्रकारिता के प्रश्न, राजेंद्र शंकर भट्ट, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2000
10. महिला उत्पीड़न और बलात्कार के प्रति जागरूक करने में दैनिक समाचार-पत्रों की भूमिका, MAC 208
11. महिला सशक्तिकरण विविध आयाम, संपादक डॉ हरिमोहन धावन, मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, उज्जैन, प्रथम संस्करण 2002
12. क्राइम, कानून और रिपोर्टर, हर्ष देव, भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010
13. पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य, राजकिशोर,साहित्य सहकार, दिल्ली, संस्करण 1998
14. स्त्री पुरुष कुछ पुनर्विचार, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2000

[13] स्त्री जो महज त्वचा है- सुधीश पचौरी, (स्त्री: परंपरा और आधुनिकता, संपादक-राजकिशोर) पृष्ठ 79-80